संपादकीय

अब हवाएँ ही करेंगी रौशनी का फैसला

सत्रहवीं लोकसभा के लिए चुनाव का आगाज हो चुका है। यह 11 अपैल से 19 मई तक सात चरणों में होगा। 23 मई को मतगणना होगी। हम सब जानते हैं कि लोकतंत्र शासन करने की सबसे समुन्नत, प्रगतिशील और लोकप्रिय पद्धति है, क्योंकि शासित होने वाली जनता परोक्षतः स्वयं शासक की भूमिका में है। वह अपने लिए अच्छा-बुरा सोचती है; जो उचित समझे, उसे कर सकती है। यों भी जब कोई बात जनता के ऊपर छोड़ी जाती है, तो उसका कोई खास मतलब नहीं रहता, क्योंकि जनता की राय भिन्न-भिन्न तरह की और परस्पर विरोधी भी होती है। भारत तो अनंत विविधताओं से भरा देश है; जिनमें करीब 90 करोड़ मतदाता हैं, हालाँकि अभी अंतिम आँकड़ा आना बाकी है। कभी कोई पक्ष प्रभावी रहता है तो कभी कोई और मत। यह भी सच है कि समूची जनता कभी शासन नहीं कर सकती, क्योंकि तब वह किस पर शासन करेगी? सबका अपने ऊपर ही आत्म-शासन होगा, जिसके लिए किसी बाह्य तंत्र की जरूरत नहीं रहेगी! इसलिए जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन को व्यावहारिक जामा पहनाने के लिए जनता द्वारा अपने प्रतिनिधियों को सीमित संख्या में सीधे चुनने की प्रक्रिया अपनानी पड़ती है, यद्यपि सहभागी लोकतांत्रिक सिद्धांत के अंतर्गत सभी वर्गों के सुमचित प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने का प्रयास भी सन्निहित रहता है। इसके खिलाफ भी दलीलें दी जाती हैं कि अब विशेषज्ञता का जमाना है, चुने हुए सब लोग समस्याओं और चुनौतियों की पेचीदगी से निबटने में सक्षम नहीं होते, अतः विशेषज्ञों का सहारा लेना पड़ता है। इसी मान्यता के अनुरूप लंबे समय तक कुछ खास किस्म के लोगों का लोकतांत्रिक संस्थाओं पर वर्चस्व रहा है। लेकिन इतना तो मानना ही चाहिए कि सभी लोग न तो कानून बनाने के लिए सक्षम हो सकते हैं, न ही शासन चला सकते हैं, इसलिए उपयुक्त की तलाश में चुनाव की अपरिहार्यता स्वयंसिद्ध है। चुनाव उपलब्ध विकल्पों में से ही होता है। सामने लड़ रहे व्यक्तियों-दलों में से ही किसी एक को चुनना है। भविष्य में चुनाव की ऐसी प्रक्रिया भी विकसित की जा सकती है, जिसमें बहुसंख्यक लोग अपनी तरफ से किसी को चुन सकें, चाहे वह चुनावी अखाड़े में सामने न भी हो; वैसे ही जैसे सबको अस्वीकारने के लिए नोटा का प्रावधान कर दिया गया है। लेकिन इससे कोई खास परिणाम नहीं निकलता, बेशक उम्मीदवार की जीत-हार का फैसला उलट-पुलट जाता हो। इस बार वहाँ दुबारा चुनाव कराने की नौबत आ सकती है, जहाँ नोटा को सभी प्रत्याशियों से अधिक वोट मिलेंगे। किंतु यह भी नोटा वोटों के इस्तेमाल का कारगर उपाय नहीं है।

लोकतांत्रिक चुनाव की सफलता की प्राथमिक शर्त है जनलोक की जागरूकता और चेतनशीलता। लोकतंत्र की सफलता भी इसी जन-परिपक्वता की मात्रा पर निर्भर है। बिना किसी पूर्वाग्रह के अपनी पसंद के प्रत्याशी व दल को चुनना और नापसंदगी को भी स्पष्टतः जाहिर करना हर व्यक्ति का लोकतांत्रिक अधिकार है। वोट देते समय जरूर ध्यान रखना चाहिए कि जो विकल्प उपस्थित हैं, उन्होंने जीवन में सुपरिवर्तन लाने की दिशा में कौन-सा कार्य किया है। उससे समाज, प्रशासन, शासन के स्तर पर जो अपेक्षित बदलाव होने चाहिए थे, वे हो पाए या नहीं? यदि हाँ तो कितनी मात्रा में? दुर्भाग्यवश, काफी कम ही लोग इस पर विचार करते हैं, ज्यादातर जातीय, क्षेत्रीय, धार्मिक, सांप्रदायिक स्वार्थ के आधार पर मत प्रकट करते हैं; यद्यपि सीमित संदर्भों में इसकी अहमियत से इनकार नहीं किया जा सकता। दलीय प्रतिबद्धता भी एक तरह की गुलामी-जड़ता ही है, लेकिन कैडर वोटरों के लिए यह एक आवश्यक गुण है। अपने कैडर वोटरों का संख्यात्मक अनुमान अमूमन सभी दलों को है, जिनमें बहुत ज्यादा उतार-चढ़ाव की संभावना नहीं है। कैडर वोटर बाकी क्षेत्रों में कितने ही प्रबुद्ध हों, लेकिन दल के गुण-दोष का सही आकलन नहीं कर पाते, वे अपने व पराए दलों को लेकर पूर्वाग्रहग्रस्त होते हैं। यदि कभी व्यक्तिगत हितों को चोट पहुँचती है, तो दल बदल लेते हैं, अपने दल से भितरघात करते हैं। ऐसे प्रतिबद्ध वोटरों से विलग जो वोटर गुण-दोष के आधार पर मतदान करते हैं, वे लोकतांत्रिक चुनाव की रीढ़ हैं और किसी पार्टी और प्रत्याशी की हार-जीत का फैसला भी उन्हीं पर अधिक निर्भर रहेगा, इनमें नए मतदाताओं की अच्छी-खासी संख्या है। नए वोटरों को उत्साहित करना भी अपेक्षाकृत आसान है, इन पर सभी दलों की निगाहें हैं। शिक्षितों-बुद्धिजीवी मतदाताओं की दिक्कत है कि वे या तो एकदम तटस्थ हैं, या राग-द्वेष से युक्त हैं। चुनावी जंग में सक्रिय नहीं रहते, जिसकी वजह से उनकी बुद्धि-चेतना मतदान में न स्वयं के लिए काम करती है और न ही अन्य मतदाताओं में जागरूकता फैलाने की दृष्टि से उपयोग में आ पाती है। एक तो इनकी संख्या कम है और जो है भी, वह भी मतदान में भाग लेना अपनी तौहीन समझती है। ऐसे में अल्लामा इकबाल यह कहना कि केवल संख्या-बल के आधार पर फैसला हो जाता है, एकदम ठीक लगता है -

जम्हूरियत इक तर्ज-ए-हुकूमत है कि जिसमें
बंदों को गिना करते हैं तौला नहीं करते।

चुनावी जागरूकता व सक्रियता का महत्त्व इसलिए अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि भारत में हजारों विचार-आंदोलन गतिमान हैं। वर्तमान एनडीए सरकार लगभग तीस दलों का गठबंधन है, जिनमें एक दर्जन अन्य दूसरे दलों के जुड़ने का भी संकेत है; तो दूसरी तरफ राजनीतिक क्षितिज पर जो वैकल्पिक महागठबंधन बनाने का प्रयास चल रहा है, वह भी दर्जनों दलों का गठजोड़ है। वर्तमान में राष्ट्रीय दलों की संख्या 7, क्षेत्रीय दलों की संख्या 24, गैर मान्यता दलों की 2044 हैं। परंतु वास्तव में अखिल भारतीय स्तर पर व्याप्ति भाजपा व कांग्रेस की है, कुछ-कुछ कम्यूनिस्ट पार्टियों और बहुजन समाज पार्टी की भी है। सबके अपने-अपने घोषणा-पत्र, सिद्धांतिकी और व्यवहारिकी के अतिरिक्त दलीय-निर्दलीय उम्मीदवारों के अपने वायदे व घोषणाएँ हैं। यह सही है कि आम जनता घोषणा-पत्र पढ़कर वोट नहीं डालती, लुभावने वायदे उसे ज्यादा लुभाते हैं। इसलिए अनेक घोषणाएँ व वायदे ऐसे होते हैं, जिनकी केवल वोट बटोरने की दृष्टि से उपयोगिता है। इन्हें पहचान कर मतदान करना आम और खास सभी मतदाताओं का फर्ज है। तात्कालिक फायदे पर ध्यान केन्द्रित रखने की बजाय दीर्घकालिक, दूरदर्शी, कर्मशील, पारदर्शी राजनीति को तरजीह देना लोकतंत्र की जीत है। अफवाह, दुष्प्रचार, वायदे, जुमले, पैसे, प्रलोभन सबका जोर आजमाया जाएगा। इनके झाँसे में आने और भावनाओं में बहने की बजाय निदा फाजली के निम्न संदेश को दृष्टिगत रखना चाहिए -

हर आदमी में होते हैं दस बीस आदमी,
जिसको भी देखना हो कई बार देखना।

यह भी सही है कि चुनावी माहौल में वायदे-भाषणों से भ्रम फैलता भी है और दूर भी होता है, फिर भी मुद्दों को लेकर प्रत्याशियों को जनता को अंधेरे में नहीं रखना चाहिए, लेकिन पाँच साल में जितने कार्य हो सकते हैं, उन सबका घोषणा-पत्र में उल्लेख नामुमकिन है। कई बार सुनने में आता है कि सारे दल एक जैसे ही हैं; गजलकार दुष्यंत कुमार ने कहा भी है -'पक्ष औ' प्रतिपक्ष संसद में मुखर हैं/बात इतनी है कि कोई पुल बना है।' फिर भी जो अपेक्षाकृत उपयुक्त लगे, उसका चयन करना चाहिए। यह जनजागृति के बिना संभव नहीं है। जागरूकता के अभाव में मतदान का अधिकार रहने पर भी उसका सही इस्तेमाल नहीं हो पाता। इस संदर्भ में धूमिल की कविता भी काबिलेगौर है -'वे घर की दीवारों पर नारे/लिख रहे थे/मैंने अपनी दीवारें जेब में रख लीं।/उन्होंने मेरी पीठ पर नारा लिख दिया/मैंने अपनी पीठ कुर्सी को दे दी/और अब पेट की बारी थी/..../मैंने उसे सहलाया/मेरा पेट/समाजवाद की भेंट है/और अपने विरोधियों से कहला भेजा/वे आएँ और साहस हैं तो लिखें/मैं तैयार हूँ।/न मैं पेट हूँ/न दीवार हूँ/न पीठ हूँ/अब मैं विचार हूँ।' चुनाव का अपने आप में कोई विशेष महत्त्व नहीं है, जब तक कि वह नीर-क्षीर विवेक से संपन्न न किया जाए। पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने कहा है कि 'लोकतंत्र से सब काम किया जा सकता है, परंतु उसे कायम रखने के लिए यह साबित करना होगा कि लोकतंत्रीय शासन की व्यावहारिक कार्य-व्यापारों द्वारा लोगों की सुरक्षा का संरक्षण हो सकता है। लोग अपनी स्वतंत्रता की रक्षा किसी भी मूल्य पर करने को इच्छुक हैं। सुरक्षा और स्वतंत्रता के बचाव का पहला मार्ग आर्थिक सुरक्षा का संरक्षण है।' यह बिल्कुल सही है, भले ही राजनीतिक कूटनीति दूसरी तरफ भरमाती रही हो। दिनकर जी ने लिखा है -

लगा राजनीतिज्ञ रहा अगले चुनाव पर घात,
राजपुरुष सोचते किंतु, अगली पीढ़ी की बात।
'हाँ' बोले तो 'शायद' समझो, 'स्यात्' कहे तो ना जानो।
और कहे यदि 'ना' तो उसको कूटनीतिज्ञ मत मानो।

चुनाव लोकतंत्र का महापर्व है। आखिर जब लोकतांत्रिक राजनीति में इतनी बड़ी ताकत है कि लार्ड बिवरेज ने कहा कि 'प्रजातंत्र और तानाशाही में अंतर नेताओं के अभाव में नहीं है, बल्कि नेताओं को बिना उनकी हत्या किए बदल देने में है।' तो फिर इससे एलर्जी क्यों? सामाजिक आंदोलन, स्वयंसेवी संगठन कितने ही सशक्त हों, वे स्वयं में सत्ता का कोई ढाँचा तैयार नहीं कर सकते, उसका खाका जरूर खींच कर सकते हैं। धन-बल, बाहुबल के बेइंतिहा निवेश व इस्तेमाल से लोकतंत्र का पूंजीवादी स्वरूप स्थिर होता है, वह अपने वास्तविक सरोकारों से भटकता है, कुछ खास तरह के लोगों के समूह का जुनून बनता है। इन सबसे मुक्त करके सही मायने में लोकतांत्रिक राजनीति को फलीभूत किया जा सकता है। कहा जाता है कि जंग में सब कुछ जायज है, चुनावी जंग में भी यह बात बिलकुल यथार्थ है -'समरथ को नहि दोष गोसाई, रवि पावक सुरसरि की नाई।' जीतने वाले का अवगुण भी गुण बन जाता है और हारने वालों का गुण भी अवगुण कहलाता है। सारी चालाकी, समझदारी, शक्ति, पराक्रम, आदर्शवादिता जीतने पर ही बघारी जा सकती है। लेकिन यह जंगियों का प्रयोजन हो सकता है, व्यापक लोक का नहीं। पूरे पारदर्शी व निष्पक्ष तरीके से लोक को अपना प्रतिनिधि चुनने का लोकतांत्रिक उत्सव है अगला लोकसभा चुनाव। इस चुनाव और उसके परिणाम की प्रतीक्षा महशर बदायूनी के निम्न शब्दों में की जा सकती है -

अब हवाएँ ही करेंगी रौशनी का फैसला,
जिस दिए में जान होगी वो दिया रह जाएगा।